राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ

एकलपीठ सिविल विविध अपील संख्या 511/2009

1. राजस्थान सरकार, मुख्य अभियंता, राष्ट्रीय राजमार्ग, लोक निर्माण विभाग, जैकब रोड, हसनपुरा, जयपुर, के माध्यम से।

2. कार्यकारी अभियंता, लोक निर्माण विभाग, राष्ट्रीय राजमार्ग, डिवीजन-4, पीडब्ल्यूडी प्रधान कार्यालय, निर्माण भवन, बी-ब्लॉक, जैकब रोड, जयपुर

----अपीलार्थीगण

बनाम

मेसर्स गोधरा कंस्ट्रक्शन कंपनी, रजिस्टर्ड पार्टनरशिप फर्म, 97, हरि मार्ग, सिविल लाइंस, जयपुर पार्टनर श्री धर्मपाल गोधरा के माध्यम से।

----प्रत्यर्थी

अपीलार्थी (गण) की ओर से : **श्री पंकज चौधरी**, अधिवक्ता
श्री रोहित चौधरी, डिप्टी जीसी

प्रत्यर्थी (गण) की ओर से : श्री आर.पी. गर्ग, एडवोकेट।

माननीय न्यायमूर्ति अनूप कुमार ढंड

निर्णय

रिपोर्टेबल

05/05/2022

राजस्थान राज्य द्वारा अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक) संख्या 7, जयपुर शहर, जयपुर की अदालत द्वारा सिविल विविध प्रकरण संख्या 41/2008 (383/2007) (इसके बाद 'नीचे की अदालत' के रूप में संदर्भित) में पारित दिनांक 30.08.2008 के आक्षेपित निर्णय के खिलाफ तत्काल विविध अपील को प्राथमिकता दी गई है, जिसके तहत दिनांक 29.07.2000 के मध्यस्थ अधिनिर्णय के विरुद्ध मध्यस्थता और सुलह अधिनियम 1996 (संक्षेप में 1996 का अधिनियम) की धारा 34 के अंतर्गत अपीलार्थी-राजस्थान राज्य द्वारा दायर आपत्तियों को अस्वीकृत कर दिया गया है।

इस अपील के लिए संक्षिप्त तथ्य यह है कि आगरा रोड, राष्ट्रीय राजमार्ग-11 पर 14 किलोमीटर की लंबाई में 100 से 149 किलोमीटर (किलोमीटर 101/0 से 104/0, 132/0 से 136/0, 141/0 से 146/0 से 149/0 तक) में पेवर और हॉट मिक्स प्लांट के नवीकरण कार्य के लिए प्रत्यार्थियों को कार्य अनुबंध दिया गया था जिसके लिए वर्ष 1993-94 को पक्षों के बीच करार सं. 24 निष्पादित किया गया था। इस करार में विवाद को हल करने के लिए एक मध्यस्थता खंड था। कार्य की प्रगति के दौरान, पक्षों के बीच विवाद उत्पन्न हो गया। फिर प्रत्यार्थियों ने 1996 के अधिनियम की धारा 10 और 11 के तहत जिला न्यायाधीश के समक्ष आवेदन प्रस्तुत किया, जिन्होंने विवाद को हल करने के लिए दिनांक 28.08.1998 के आदेश के तहत एक मध्यस्थ नियुक्त किया। दोनों पक्षों को सुनने के बाद, मध्यस्थ ने दिनांक 29.07.2000 के पंचाट के तहत 25.04.1997 से इसके वास्तविक भुगतान तक 18% ब्याज के साथ 4,33,161.79 रुपये का पंचाट पारित किया। और इस पंचाट की प्रति मुख्य अभियंता, पीडब्ल्यूडी (राष्ट्रीय राजमार्ग), जयपुर को अग्रेषित की गई थी।

जब पंचाट पर संतुष्टि नहीं हुई, तो प्रत्यार्थियों ने दिनांक 29.07.2000 के निर्णय के संदर्भ में डिक्री पारित करने के लिए जिला न्यायाधीश, जयपुर की अदालत के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया। जब इस आवेदन के नोटिस अपीलार्थी-राज्य को दिए गए, तो अपीलार्थी ने दिनांक 29-07-2000 के निर्णय के संबंध में उपर्युक्त आवेदन का उत्तर 22-02-2001 को दाखिल करके आपत्ति प्रस्तुत की। चूंकि आपत्तियां दर्ज करने में देरी हुई थी, इसलिए देरी को माफ करने के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत एक आवेदन प्रस्तुत किया गया।

अतिरिक्त जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक नंबर 7), जयपुर ने दिनांक 30.08.2008 के आदेश के तहत आपत्तियों को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि आपत्तियां 1996 के अधिनियम की धारा 34 (3) के तहत निर्धारित सीमा के भीतर दायर नहीं की गई थीं और यह भी माना कि आपत्तियों को गुण-दोष के आधार पर तय नहीं किया जा सकता है क्योंकि वे सीमा से परे हैं।

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि मध्यस्थ द्वारा अपीलार्थी के प्रभारी अधिकारी को निर्णय की प्रति उपलब्ध नहीं कराई गई थी। इसलिए आपत्तियां दर्ज करने

में देरी हुई है, लेकिन नीचे दी गई अदालत ने इसे कालातीत के रूप में मानते हुए आपत्तियों को खारिज करने में अवैधता की है।

इसके विपरीत, प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अपीलार्थी द्वारा इस मामले को मध्यस्थ के समक्ष चुनौती दी गई थी और मध्यस्थ ने दोनों पक्षों को सुनने के बाद 29.07.2000 को पंचाट पारित किया और पंचाट की प्रति मुख्य अभियंता, पीडब्ल्यूडी (राष्ट्रीय राजमार्ग), जयपुर को भेज दी गई। अधिवक्ता ने आगे कहा कि अपीलार्थी को निर्णय के पारित होने के बारे में अच्छी तरह से पता था, क्योंकि उन्होंने पूरी मध्यस्थता कार्यवाही में भाग लिया है। और अब आपत्तियां 1996 के अधिनियम की धारा 34 (3) के तहत निहित सीमा की निर्धारित अवधि से परे प्रस्तुत की गई थीं, जो **भारत संघ बनाम लोकप्रिय निर्माण कंपनी: 2001 (3) एआरबी एलआर 345 (एससी)** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय के आलोक में समर्थन दिए जाने योग्य नहीं थीं।

दोनों पक्षों की दलीलों को सुना गया और उन पर विचार किया गया।

अनुक्रम को नोट करने के बाद, इस अपील में विचार के लिए एकमात्र पहलू यह उठता है कि क्या 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत दायर आपत्ति याचिका उसमें प्रदान की गई सीमा की अवधि के भीतर थी। यदि नहीं, तो क्या परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत शक्ति का प्रयोग करके विलंब को माफ किया जा सकता है?

इस मामले को उसके सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए परिसीमा पर 1996 के अधिनियम की धारा 34(3) पर ध्यान देना आवश्यक है जिसमें परिसीमा की अवधि का प्रावधान है, जो निम्नानुसार है:-

> "धारा 34 (3):— उस आवेदन को करने वाले पक्ष को मध्यस्थ पुरस्कार प्राप्त होने की तारीख से तीन महीने बीत जाने के बाद या यदि धारा 33 के तहत अनुरोध किया गया था, तो उस तारीख से जिसे मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा उस अनुरोध का निपटारा किया गया था, रद्द करने के लिए आवेदन नहीं किया जा सकता है:
>
> बशर्ते कि यदि न्यायालय संतुष्ट है कि आवेदक को तीन महीने की उक्त अवधि के भीतर आवेदन करने से पर्याप्त कारण से रोका गया था, तो वह तीस दिनों की आगे की अवधि के भीतर आवेदन करने पर विचार

कर सकता है, लेकिन उसके बाद नहीं।

परिसीमा अधिनियम की धारा 34(3) और धारा 5 के परंतुक में निहित विलंब की क्षतिपूर्ति के लिए उपलब्ध गुंजाइश को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पॉपुलर कंस्ट्रक्शन कं. (सुप्रा) के मामले में नोट किया गया है, जिसमें इसे निम्नानुसार माना गया है:-

"12. जहां तक 1996 के अधिनियम की धारा 34 की भाषा का संबंध है, उप-धारा (3) के परंतुक में महत्वपूर्ण शब्दों का उपयोग "लेकिन उसके बाद नहीं" किया गया है। हमारी राय में, यह वाक्यांश परिसीमा अधिनियम की धारा 29 (2) के अर्थ के भीतर एक स्पष्ट बहिष्करण होगा, और इसलिए उस अधिनियम की धारा 5 के अनुप्रयोग पर रोक लगाएगा। यह कहना कि अदालत इस प्रावधान के तहत विस्तारित अवधि से परे निर्णय को रद्द करने के आवेदन पर विचार कर सकती है, "लेकिन उसके बाद नहीं" वाक्यांश को पूरी तरह से अनुचित बना देगा। व्याख्या का कोई भी सिद्धांत इस तरह के परिणाम को सही नहीं ठहराएगा।

14. यहां 1996 के अधिनियम का इतिहास और योजना इस निष्कर्ष का समर्थन करती है कि किसी निर्णय को चुनौती देने के लिए धारा 34 के तहत निर्धारित समय-सीमा परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत अदालत द्वारा पूर्ण और विस्तारयोग्य नहीं है। मध्यस्थता और सुलह विधेयक, 1995, जो 1996 के अधिनियम से पहले था, ने अपने मुख्य उद्देश्यों में से एक के रूप में "मध्यस्थ प्रक्रिया में अदालतों की पर्यवेक्षी भूमिका को कम करने" की आवश्यकता के रूप में वर्णित किया है, इस उद्देश्य को अधिनियम की धारा 5 में अभिव्यक्ति मिली है जो बिना किसी अनिश्चित शब्दों में न्यायिक हस्तक्षेप की सीमा निर्धारित करता है:

> "5. न्यायिक हस्तक्षेप की सीमा- इस समय लागू किसी अन्य कानून में निहित किसी भी बात के बावजूद, इस भाग द्वारा शासित मामलों में, कोई भी न्यायिक प्राधिकरण हस्तक्षेप नहीं करेगा, सिवाय इसके कि जहां इस भाग में ऐसा प्रावधान किया गया है।

16. इसके अलावा, धारा 34 (1) में ही प्रावधान है कि मध्यस्थ पंचाट के खिलाफ अदालत का सहारा केवल उप-धारा (2) और उप-धारा (3) के

अनुसार इस तरह के निर्णय को रद्द करने के लिए एक आवेदन द्वारा लिया जा सकता है। उप-धारा (2) किसी अधिनिर्णय को निरस्त करने के आधार से संबंधित है और हमारे प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक नहीं है। लेकिन धारा 34, उप-धारा (3) में उल्लिखित अवधि से परे दायर किया गया आवेदन उस उप-धारा के अनुसार "आवेदन नहीं" होगा। नतीजतन, धारा 34 (1) के आधार पर, एक मध्यस्थ निर्णय के खिलाफ अदालत का सहारा निर्धारित अवधि से अधिक नहीं किया जा सकता है। धारा 34 के तहत तय अवधि के महत्व पर धारा 36 के प्रावधानों द्वारा जोर दिया गया है जो प्रावधान करता है कि-

> "जहां धारा 34 के तहत मध्यस्थ पंचाट को रद्द करने के लिए आवेदन करने का समय समाप्त हो गया है... यह निर्णय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के तहत उसी तरह से लागू किया जाएगा जैसे कि यह अदालत की डिक्री हो।

यह मध्यस्थता अधिनियम, 1940 के प्रावधानों से एक महत्वपूर्ण बदलाव है। 1940 के अधिनियम के तहत, निर्णय को रद्द करने का समय समाप्त होने के बाद, अदालत को "निर्णय के अनुसार निर्णय सुनाने के लिए आगे बढ़ना आवश्यक था, और इस तरह सुनाए गए निर्णय पर एक डिक्री का पालन किया जाएगा" (धारा 17)। अब 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत समाप्त होने वाले समय का परिणाम यह है कि अदालत के किसी भी और कार्य के बिना निर्णय तुरंत लागू करने योग्य हो जाता है। यदि धारा 34 में प्रयुक्त भाषा की व्याख्या पर कोई शेष संदेह था, तो 1996 के अधिनियम की योजना परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के संचालन को बाहर करके अदालत की शक्तियों में कटौती के पक्ष में मुद्दे को हल करेगी।

इसके अलावा, हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हिमाचल टेक्नो इंजीनियर्स एवं अन्य (2010) 12 एससीसी 210, मामले में यह निम्नानुसार निर्णय किया गया था:–

> "2. मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (संक्षेप में "अधिनियम) की धारा 34 के तहत अपीलार्थी द्वारा 11-03-2008 को एक

याचिका दायर की गई थी, जिसमें मध्यस्थ पंचाट को चुनौती दी गई थी। याचिका के साथ अधिनियम की धारा 34 की उप-धारा (3) के तहत एक आवेदन भी था, जिसमें याचिका दायर करने में 28 दिनों की देरी के लिए माफी मांगी गई थी। प्रत्यर्थी ने आवेदन का विरोध करते हुए तर्क दिया कि धारा 34 के तहत याचिका 3 महीने और 30 दिनों की अवधि से परे दायर की गई थी और इसलिए, खारिज कर दिया जाना चाहिए।

5. अधिनियम की धारा 34 (3) के परंतुक को ध्याना में रखते हुए, परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के प्रावधान अधिनियम की धारा 34 के तहत याचिकाओं के संबंध में लागू नहीं होंगे। जबकि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 में देरी की अवधि के संबंध में कोई बाहरी सीमा निर्धारित नहीं की गई है, अधिनियम की धारा 34 की उप-धारा (3) के परंतुक में "तीस दिनों की आगे की अवधि के भीतर आवेदन पर विचार किया जा सकता है, लेकिन उसके बाद नहीं शब्दों का उपयोग करके प्रदान की जाने योग्य देरी की अवधि पर एक सीमा निर्धारित की गई है। इसलिए, यदि कोई याचिका तीन महीने की निर्धारित अवधि से अधिक समय उपरांत दायर की जाती है, तो अदालत के पास केवल तीस दिनों की सीमा तक देरी को माफ करने का विवेकाधिकार है, बशर्ते पर्याप्त कारण दिखाया गया हो। जहां याचिका तीन महीने और तीस दिन से अधिक समय के लिए दायर की जाती है, भले ही पर्याप्त कारण दिया गया हो, देरी को माफ नहीं किया जा सकता है।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने भी **पी. राधा बाई बनाम पी. अशोक कुमार** (2019) 13 एससीसी 445 के मामले में इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया था। जिसमें यह निम्नानुसार कहा गया था-

"33.2. धारा 34 (3) का परंतुक एक अदालत को तीन महीने की अवधि समाप्त होने के बाद किसी निर्णय को चुनौती देने के लिए एक आवेदन पर विचार करने में सक्षम बनाता है, लेकिन केवल तीस तारीखों की अतिरिक्त अवधि के भीतर, "उसके बाद नहीं"। "लेकिन उसके बाद

नहीं" वाक्यांश का उपयोग दर्शाता है कि 120 दिनों की अवधि किसी पंचाट को चुनौती देने के लिए बाहरी सीमा है। यदि धारा 17 लागू की जाती है, तो किसी निर्णय को चुनौती देने के लिए बाहरी सीमा 120 दिनों से अधिक हो सकती है। इस न्यायालय ने लगातार यह दृष्टिकोण अपनाया है कि मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34 (3) के परंतुक में "लेकिन उसके बाद नहीं" शब्द अनिवार्य प्रकृति के हैं, और नकारात्मक शब्दों में निहित हैं, जो संदेह के लिए कोई जगह नहीं छोड़ते हैं। [हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम हिमाचल टेक्नो इंजीनियर्स (2010) 12 एससीसी 210], असम शहरी जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड बनाम सुभाष प्रोजेक्ट्स एंड एमकेटीजी लिमिटेड (2012) 2 एससीसी 624 और अनिल कुमार जीनाभाई पटेल बनाम प्रवीणचंद्र जीनाभाई पटेल (2018) 15 एससीसी 178]"

1996 के अधिनियम की धारा 34 (3) के तहत निर्धारित सीमा को बढ़ाने में परिसीमा अधिनियम की धारा 5 की गैर-प्रयोज्यता से संबंधित विभिन्न निर्णयों में माननीय उच्चतम न्यायालय की टिप्पणियों को माननीय उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पीठ ने चिंटेल्स इंडिया लिमिटेड बनाम भयाना बिल्डर्स प्राइवेट लिमिटेड (2021) 4 एससीसी 602 में अनुमोदन के साथ नोट किया था।

सिम्प्लेक्स इंफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड बनाम भारत संघ, (2019) 2 एससीसी 455 में रिपोर्ट किया गया, के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की है, जो निम्नानुसार है:–

"11. परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 किसी भी अपील या आवेदन के लिए निर्धारित अवधि के विस्तार से संबंधित है, जो अदालत की संतुष्टि के अधीन है कि अपीलार्थी या आवेदक के पास अपील को प्राथमिकता नहीं देने या निर्धारित अवधि के भीतर आवेदन करने के लिए पर्याप्त कारण थे। परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 में 1996 अधिनियम की धारा 34 के तहत मध्यस्थ निर्णय को चुनौती देने वाले आवेदन पर कोई अनुप्रयोग नहीं है। इस न्यायालय ने भारत संघ बनाम

पॉपुलर कंस्ट्रक्शन कंपनी में अपने निर्णय में इसका निपटारा किया है, जहां यह निम्नानुसार कहा गया है:

> "12. जहां तक 1996 के अधिनियम की धारा 34 की भाषा का संबंध है, उप-धारा (3) के परंतुक में महत्वपूर्ण शब्दों का उपयोग "लेकिन उसके बाद नहीं" किया जाता है। हमारी राय में, यह वाक्यांश परिसीमा अधिनियम की धारा 29 (2) के अर्थ के भीतर एक स्पष्ट बहिष्करण होगा, और इसलिए उस अधिनियम की धारा 5 के आवेदन पर रोक लगाएगा। यह कहना कि अदालत इस प्रावधान के तहत विस्तारित अवधि से परे निर्णय को रद्द करने के आवेदन पर विचार कर सकती है, "लेकिन उसके बाद नहीं" वाक्यांश को पूरी तरह से अनुचित बना देगा। व्याख्या का कोई भी सिद्धांत इस तरह के परिणाम को सही नहीं ठहराएगा.....।
>
> 14. यहां 1996 के अधिनियम का इतिहास और योजना इस निष्कर्ष का समर्थन करती है कि किसी निर्णय को चुनौती देने के लिए धारा 34 के तहत निर्धारित समय-सीमा परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत अदालत द्वारा पूर्ण और विस्तारयोग्य नहीं है..."

18. 1996 के अधिनियम की धारा 34 के परंतुक के साथ उप-धारा (3) को पढ़ने से पता चलता है कि धारा 34 की उप-धारा (2) में उल्लिखित आधारों पर निर्णय को रद्द करने के लिए आवेदन तीन महीने के भीतर किया जा सकता है और अवधि को केवल पर्याप्त कारण दिखाने पर तीस दिनों की और अवधि के लिए बढ़ाया जा सकता है, न कि उसके बाद। परंतुक में "लेकिन उसके बाद नहीं" शब्दों का उपयोग यह स्पष्ट करता है कि विस्तार तीस दिनों से अधिक नहीं हो सकता है। यहां तक कि अगर परिसीमा अधिनियम की धारा 14 का लाभ प्रत्यर्थी को दिया जाता है, तब भी आवेदन दाखिल करने में 131 दिनों की देरी होगी। यह

1996 के अधिनियम की धारा 34 के परंतुक के साथ पढ़ी गई उप-धारा (3) में निर्धारित सख्त समयसीमा से परे है। 131 दिनों की देरी को माफ नहीं किया जा सकता। ऐसा करना, जैसा कि उच्च न्यायालय ने किया, एक स्पष्ट वैधानिक अधिदेश का उल्लंघन करना है।

20. प्रत्यर्थी ने भारत संघ बनाम टेक्को त्रिची इंजीनियर्स एंड कॉन्ट्रैक्टर्स मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है, जहां इस न्यायालय को प्रभावी तारीख तय करनी थी जिससे अधिनियम की धारा 34 की उपधारा (3) के अर्थ के भीतर सीमा की गणना की जाएगी। दक्षिण रेलवे की ओर से मुख्य परियोजना प्रबंधक ने रेलवे पुल के निर्माण के लिए एक ठेकेदार के साथ अनुबंध किया था। पक्षों के बीच विवादों को मध्यस्थता के लिए भेजा गया था और महाप्रबंधक, दक्षिण रेलवे के कार्यालय में एक पंचाट दिया गया था। मुख्य अभियंता ने उच्च न्यायालय के समक्ष 1996 अधिनियम की धारा 34 के तहत पंचाट के खिलाफ एक आवेदन को प्राथमिकता दी। विद्वान एकलपीठ और उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने आवेदन को सीमा द्वारा निषिद्ध मानते हुए खारिज कर दिया। इस अदालत ने उच्च न्यायालय के आदेश को उलट दिया और आवेदन को देरी के लिए माफ कर दिया। इस अदालत ने कहा कि रेलवे जैसे विशाल संगठनों में अलग-अलग मंडल प्रमुख और मंडल के भीतर विभिन्न विभाग हैं, पंचाट की प्रति उस व्यक्ति को प्राप्त करनी होती है जिसे कार्यवाही का ज्ञान हो और जो पंचाट को पढ़ने और उसे ठीक से समझ लेने के लिए सर्वोत्तम व्यक्ति हो और चुनौती के लिए आधार हो। इस न्यायालय ने पाया कि रेलवे के लिए सभी मध्यस्थ कार्यवाही का प्रतिनिधित्व मुख्य अभियंता द्वारा किया जा रहा था और महाप्रबंधक ने अनुबंध के तहत आवश्यक मध्यस्थता के लिए मामले को संदर्भित किया था। तीन महीने और 27 दिनों की देरी को माफ करते हुए, इस अदालत ने पाया कि महाप्रबंधक पर मध्यस्थ पंचाट को तामील कराने के उद्देश्य के लिए सीमा के शुरुआती बिंदु का गठन करने के लिए पर्याप्त नोटिस नहीं माना जा सकता है। इस मामले में निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों

के लिए कोई प्रयोज्यता नहीं है क्योंकि मध्यस्थ पंचाट प्राप्त करने वाले पक्ष के संबंध में कोई विवाद नहीं है। यह एक स्वीकार्य स्थिति है कि 27 अक्तूबर 2014 को, मध्यस्थ ने अपीलार्थी के पक्ष में एक निर्णय दिया और 31 अक्तूबर 2014 को, भारत संघ को पंचाट की एक प्रति प्राप्त हुई। 1996 अधिनियम की धारा 34 के तहत आवेदन दायर करने में देरी के लिए प्रत्यर्थी द्वारा बताए गए कारणों में से एक यह था कि विभागीय कार्यालय पोर्ट ब्लेयर, अंडमान में स्थित था और चेन्नई में सर्कल कार्यालय से अनुमति प्राप्त करना एक समय लेने वाली प्रक्रिया थी। प्रशासनिक कठिनाइयां 1996 अधिनियम की धारा 34 के तहत वैधानिक निर्धारित अवधि से अधिक और उससे अधिक देरी को माफ करने का वैध कारण नहीं होंगी।

इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि मध्यस्थता अधिनिर्णय 29-07-2000 को पारित किया गया था और अपीलार्थी-राजस्थान राज्य द्वारा 21-11-2000 को 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत आपत्तियां दर्ज की गई थीं। यह कानून की एक स्वीकार्य स्थिति है कि मध्यस्थ निर्णय को रद्द करने के लिए आवेदन तीन महीने की अवधि के भीतर दायर किया जा सकता है और यह विवाद में नहीं है कि आपत्ति 21.11.2000 को संबंधित अदालत के समक्ष दायर की गई थी, इस प्रकार इसे सीमा अवधि की समाप्ति के बाद प्रस्तुत किया गया था।

मध्यस्थ पंचाट को रद्द करने के लिए आवेदन उस तारीख से गुजरने के तीन महीने बाद नहीं किया जा सकता है जिस तारीख को उस आवेदन को करने वाले पक्ष ने मध्यस्थ पंचाट प्राप्त किया था।

1996 के अधिनियम की धारा 34 (3) के परंतुक में न्यायालय को यह अधिकार दिया गया है कि यदि वह इस बात से संतुष्ट है कि आवेदक को तीन महीने की उक्त अवधि के भीतर आवेदन करने से रोका गया था ताकि मध्यस्थ के निर्णय को रद्द करने के लिए आवेदन दायर करने की अवधि को 30 दिनों तक बढ़ाया जा सके, लेकिन उसके बाद नहीं।

सांविधिक प्रावधानों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि भारतीय परिसीमा

अधिनियम की धारा 5 का प्रावधान 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत निहित कार्यवाही पर लागू नहीं होता है।

वर्तमान मामले में, इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि 29.07.2000 को मध्यस्थ अधिकरण द्वारा निर्णय पारित किया गया था और मध्यस्थ के समक्ष मध्यस्थ कार्यवाही में प्रतिस्पर्धा करने और भाग लेने के बावजूद, समय के भीतर 1996 के अधिनियम की धारा 34 (3) के तहत आपत्तियां प्रस्तुत नहीं की गई थीं।

नीचे दिए गए न्यायालय ने इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखा है और अपीलार्थी-राजस्थान राज्य द्वारा उठाई गई आपत्तियों को सीमा से परे मानते हुए खारिज कर दिया है।

ऊपर की गई चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय की राय है कि अपीलार्थी द्वारा 1996 के अधिनियम की धारा 34 (3) के तहत 29.07.2000 के मध्यस्थ निर्णय को रद्द करने के लिए दायर आवेदन 1996 के अधिनियम के तहत अनुमत सीमा की अनिवार्य अवधि से परे था। अत, परिसीमा अधिनियम के उपबंधों का सहारा लेकर इस पर विचार नहीं किया जा सकता था।

इसके परिणामस्वरूप, इस अपील में कोई बल नहीं है और इसे खारिज किया जाता है।

स्थगन आवेदन और सभी लंबित आवेदन, यदि कोई हों, को भी खारिज कर दिया जाता है।

(अनूप कुमार ढंड), न्यायधीश

PRAVESH/8

टिप्पणी: इस निर्णय का हिन्दी अनुवाद निविदा फर्म **राजभाषा सेवा संस्थान** द्वारा किया गया है, जिसे फर्म के निदेशक डॉ. वी. के. अग्रवाल, द्वारा मान्य और सत्यापित किया गया है।
अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन व कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।